श्री अरविन्द कर्मधारा

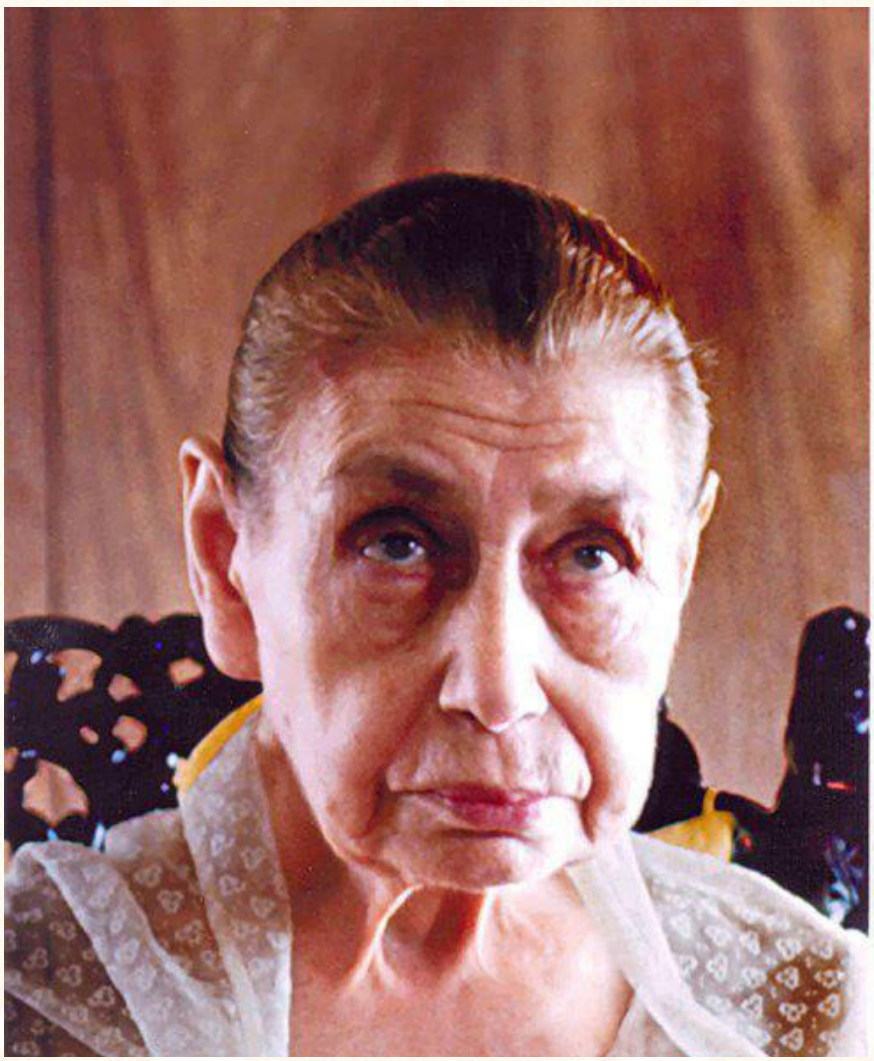

भगवान के साथ एकता के लिए अर्पित जीवन ही जीने योग्य है।

श्री माँ

वर्ष 46 अंक 6 (नवम्बर) 2016

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का मुखपत्र

वर्षः 46 2016 अंक : 4 सितम्बर

संस्थापक
श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर 'फ़क़ीर'

सम्पादिका
देवी करुणामयी

सहसम्पादन
अपर्णा रॉय,
त्रियुगी नारायण

कम्पोज़िंग
ई-मीडिया प्रिन्ट लाईन
संजय नगलिया, 9899942811

विशेष परामर्श समिति
डा. केदार नाथ वर्मा, इन्दु पिल्ले, कु. तारा जौहर,
डा. आलोक पाण्डेय, रंगम्मा, राकेश मिश्रा

विशेष सहयोग
गोविन्दा

कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26524810, 26567863

विषय-सूची

1. सम्पादकीय		2
2. प्रार्थना और ध्यान	श्री माताजी	3
4. 'सावित्रि' परम का प्रसाद	अश्विन भाई कापडिया	4
5. आहार	श्रीमाँ	7
6. पुनर्जन्म		8
7. ध्यान और प्रगति	श्रीमाँ	9
8. भगवत्कृपा एक मुसिबत	श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर	11
9. अनन्त माँ प्रणाम	विमल गुप्ता	13
10. शान्ति के लिए प्रार्थना	माताजी	15
11. श्रीमाता जी का प्रथम आगमन एवं श्री अरविन्द एवं श्री अरविन्द से भेंट		16
12. सब ठीक हो जाएगा		19
12. आश्रम की गतिविधियाँ		20

सम्पादकीय

संसार को सुखी करना जिनके जीवन का लक्ष्य बन चुका है, समाज के उत्थान के लिए अपने जीवन का बलिदान करने को जो तत्पर हैं, मानवता का मंगल ही जिनकी दृष्टि में सर्वोच्च, सबसे महत्वपूर्ण कर्म है; उनकी व्यतिगत अभिलाषाएँ अथवा माँगें नहीं होतीं, होनी भी नहीं चाहिए। वे शारीरिक सुख-भोगों को, अहंकार को संतुष्ट करने वाली वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं। उनके मन में केवल एक ही विचार रहता है – 'कैसे प्राणिमात्र को सुखी किया जाये।'

साथियों समय आ गया है, हमें श्रीअरविंद के वाङ्मय में श्रद्धापूर्वक प्रवेश करना चाहिए। उनकी शिक्षा में, उनके वचनों में विश्वास उत्पन्न करना चाहिये। यह जगत के भविष्य की निधि है। मानव जाति का भावी विकास इसी पर निर्भर करेगा। उनकी शिक्षा संसार को अज्ञान-अंधकार से मुक्त करेगी । मानव जीवन की सब समस्याओं का समाधान हम उसमें पाएंगे।

इसके साथ-साथ संसार के लिए उनकी एक दूसरी देन भी है। उन्होंने अपनी दीर्घ एवं महान् तपस्या के द्वारा एक नयी चेतना को पृथ्वी पर उतारा है, जिसे उन्होनें अतिमानसिक चेतना कहा है। जैसे मनुस्य का प्रादुर्भाव होने से पहले मानसिक चेतना का अवतरण हुआ था और उसके फलस्वरूप ही, उसके सहयोग से ही, पशु जाति में से एक जाति – जिसके अंदर उसे ग्रहण करने की क्षमता थी, जो उसके दबाव का, उसकी क्रिया का प्रत्युतर दे सकती थी, अथवा जिसमें देनें की संभावनाएं थीं- धीरे-धीरे विकसित होकर मनुष्य जाति के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुईं थीं; उसी प्रकार पृथ्वी पर अतिमानस चेतना के अवतरण के फलस्वरूप, मनुष्य जाति में से अतिमानव जाति विकसित होगी। श्रीअरविंद के कथनानुसार यह एक ध्रुव सत्य है, अवश्यंभावी घटना है। अतिमानव जाति मनुष्य जाति से उतनी ही श्रेष्ठ होगी जितनी मनुष्य जाति पशु जाति से है।

मनुष्य स्वाभाविक रूप से अपनी सत्ता के सत्य के विषय में सचेतन नहीं है। उसे अपने भूतकाल के जन्मों का कोई ज्ञान नहीं। अपने भविष्य को देखने की दृष्टि भी उसके पास नहीं है। अपनी भावी योजनाओं के विषय में, अगला चरण उठाने के विषय में वह कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। इसके विपरीत, अतिमानव में ये क्षमताए स्वभाविक होंगी। उसकी चेतना मनुष्य की भाति सीमित नहीं होगी। मनुष्य के लिए जैसे मानसिक चेतना में रहना स्वभाविक है, जो कि सीमित है, अतिमानव के लिए अतिमानसिक चेतना में निवास करना स्वभाविक होगा, जो कि असीम है। आध्यात्मिक चेतना की समस्त क्षमताएं उसके लिए स्वतः, स्वभाविक रूप से उपयोग की वस्तु होंगी। मनुष्य की तरह उसका जीवन अज्ञान पर आधारित न होकर आध्यात्मिक चेतना पर प्रतिष्ठित होगा। अतिमानव की चेतना मानव की भाँति, वस्तुओं के खंडित ज्ञान में, उनकी सीमित तथा पृथक् चेतना में न रहकर, भागवत चेतना की समग्रता में निवास करेगी।

अतिमानसिक चेतना हमारे वर्तमान दुख-दैन्य से भरे अज्ञानमय जीवन को पूर्णतः रूपातंरित कर सकती है। उसमें आत्म दिव्यता प्रवाहित कर उसे दिव्य बना सकती है। हमारा यह हाड़-मांस से निर्मित शरीर अतिमानस की ज्योति में रूपातंरित हो सकता है। शारीरिक अमरता श्रीअरविंद के योग का अवश्यंभावी परिणाम है।

संसार में कुछ नवीन होने जा रहा है। हमें उसे जानने की चेष्टा करनी चाहिए । धरती पर एक नयी चेतना का अवतरण हुआ है, जो सृष्टि-विकास-क्रम को एक कदम आगे बढ़ाएगी, मानव को देव-मानव में विकसित करेगी। अतिमानसिक चेतना मानव को तथा उसके जीवन को अपने हाथों में लेगी। इन पर दबाव डालेगी। इनमें उच्च चेतना के प्रति अभीप्सा जगाएगी। इन्हें निम्न प्रकृति के आकर्षणों से मुक्त करेगी और अंत में अपनी ज्योति तथा दिव्यता में इनका रूपातंरण संभव बनाएगी।

रुपातंरण के इस महत् कार्य में हम सब श्रीमाँ के दिखाए पथ पर पूर्ण निष्ठा और आस्था के साथ सच्चाई और लगन के साथ अनवरत बढ़ने का संकल्प करें इसी सद्भावना और सुभेच्छा के साथ।●

ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे

श्रीअरविन्द कर्मधारा

प्रार्थना और ध्यान

श्री माताजी

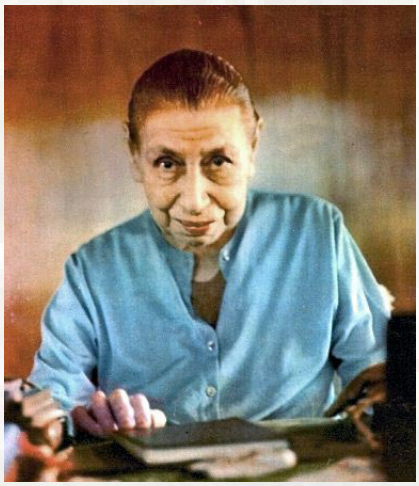

हे मेरे मधुर स्वामी, शाश्वत दीप्ति, मैं तेरे साथ केवल नीरवता और शान्ति में ही यह कहते हुये युक्त हो सकती हूँ कि प्रत्येक ब्यौरे में और समग्र में तेरी इच्छा पूरी हो। अपने राज्य पर अधिकार कर ले, तेरे विरूद्ध जो भी विद्रोह करे उसका दमन कर दे, उन आत्माओं का उपचार कर जो तुझे नहीं जानतीं और उन बुद्धियों को स्वस्थ कर दे जो तेरे आगे झुकना और तुझे समर्पण नहीं करना चाहतीं। हमारी सुप्त ऊर्जाओं को जगा, हमारे साहस को उत्तेजित कर, हे प्रभो हमें प्रबुद्ध कर और मार्ग दिखा। मेरा हृदय परम शान्ति से उमड़ रहा है, मेरा विचार निश्चल और नीरव है। जो कुछ है, जो कुछ होगा और जो कुछ नहीं है, सबके मर्म में तेरी दिव्य, अपरिवर्तनशील मुस्कान है। ●

'सावित्रि': परम का प्रसाद

• अश्विनभाई कापड़िया

इस युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'सावित्री ' आर्षदर्शन के संदर्भ में समुचित रीति से देखा जाय तो यह विश्वस्तर पर अपने सामने प्रसाद स्वरूप में आता है। 'सावित्रि' सिर्फ महाकाव्य ही नहीं है। यह तो एक महर्षि, महामानव, महायोगी, आत्मवैज्ञानिक और स्वयं परम की मानवीय पीठिका का, योग विज्ञान का परमोच्च आध्यात्मिक दर्शन है। मानवीय संस्कृति की भाषा और साहित्य में आज दिन तक इतनी ऊँचाई और गहनता का, चैतसिक विज्ञान का, मानसिक चेतना से ऊपर का दर्शन और नये युग की जीवंत वास्तविकता का, पराभौतिक विज्ञान का उद्घाटन नहीं हो पाया है। श्रीअरविन्द ने जीवन पर्यन्त आत्मसात् की गई साधना और पश्चिम की शिक्षा का जो ऊर्ध्वतम प्रसाद अपने अभ्यास के दौरान पाया, उसका तार्किक, मनोवैज्ञानिक और पराचैतसिक समन्वय 'सावित्री' में अपनी ऊर्ध्वगामी साधना के पूरे पचास वर्षों तक प्रकट किया। 'सावित्री' आगामी अतिमानसिक युग का विश्वकोश है। उत्क्राति के नये मोड़ पर खड़ी हुई मानवजाति का भविष्य है, क्या वैज्ञानिक नियति है, कैसा जीवन का स्वरूप होगा, कैसी संस्कृति प्रकट होने जा रही है, उसका पूरा आविष्कार श्रीअरविन्द ने 'सावित्री' में प्रस्तुत किया है।

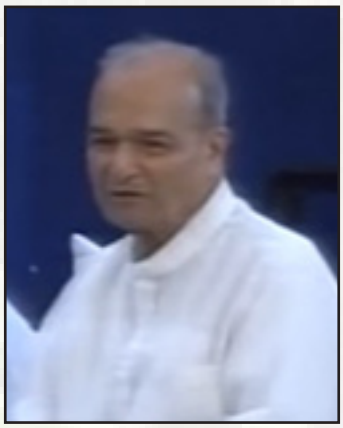

अलीपुर जेल में भगवान् श्री कृष्ण का साक्षात्कार करने के पश्चात् श्री कृष्ण की पराचेतना जिसे श्रीअरविन्द ने श्री कृष्ण की चेतना या Krishna's consciousness में कहा है, उसे अपने निजी चेतना के स्वरूप में अपने शरीर में प्रस्थापित करके अर्थात् मानवीय स्वरूप में फिर से भगवान् श्री कृष्ण को धारण कर स्वयं श्री कृष्ण बनकर पूरी मानवजाति की नयी नियति को साकार करने की जो साधना की, वह श्रीअरविन्द की साधना है जिसे श्रीअरविन्द ने स्वयं 'सावित्री' में Divine Experiment or 'Adventure of Consciousness'(दिव्य प्रयोग या चेतना की साहसिक यात्रा) कहा है।

आज तक इस पूर्णता के साथ यह साधना नहीं की गई है। यह पहली बार संपन्न किया गया प्रयोग स्वयं परम चेतना ने श्रीअरविन्द की देह को अपने नये आयामों को साकार करने के लिए स्वीकार कर इस मानवीय धरातल पर स्थापित किया है।

श्री अरविन्द ने अपने इस मार्ग को 'Sunlit Path' या 'सूर्यालोकित पथ' कहा है। पूर्व व पश्चिम की सभी साधना पद्धतियों को समुचित रूप में समन्वित कर कहीं भी अनुचित तोड़ मरोड़ किये बिना सभी भूमिकाओं को उनके श्रेष्ठ परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करते हुए जो सृजन किया है, वही श्रीअरविन्द का Yoga of Ascent बन गया। यह पूरी मानव जाति के लिए किया गया प्रयोग ही नहीं वरन् वह राजमार्ग है जहां सभी धर्मों को अपनी निजी ऊँचाई आत्मसात् करने का परिपूर्ण विज्ञान पेश किया गया है। सहस्र शताब्दियों में भारत में जो साधना की गई, जिनके पीछे जो चैतसिक विज्ञान विघमान था उसको श्रीअरविन्द ने नयी सभ्यता के मूल्यों के साथ जोड़कर उनकी गहनतम ऊँचाइयों को स्वानुभव से 'सावित्री' के काव्य स्वरूप में, मंत्रों के स्वरूप में, कविता के माध्यम से जगत् के सामने वरदान की भाँति प्रकट किया है। विश्व की सभी संस्कृति व सभ्यताओं की अपनी संस्कृति में गहनतम सत्यों की जो संभावनाएं हैं, उन्हें 'सावित्री' में श्रीअरिन्द ने प्रतीक स्वरूप सूत्र के रूप में एक संयुक्त वास्तविकता (Integrated Reality) बनाकर

सामने रखा। उन्होंने सारी मानवजाति का आह्वाहन किया कि आप सभी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को लेकर 'सावित्री' के गहनतम क्षीर सागर में प्रस्थान कर सकते हैं, आप स्वयं उस परम तत्व को आत्मसात कर पायेंगे व परमतत्व बन जायेंगे। श्रीमाँ ने जो आने वाले युग की वास्तविकता को Divine Matter कहा गया है, उस Matter को पाना ही हम सभी का Divine Right (दिव्य अधिकार) है।

अश्वपति की साधना को आधार बनाते हुए श्रीअरविन्द ने अपनी निजी साधना के दिव्य प्रयोग को जगत् के सामने प्रकट किया है।

गीता की अनुभूतियों को आधार बनाते हुए श्रीअरविन्द ने अपने पूर्णयोग का यह मार्ग तय किया। सर्वव्यापक वासुदेव की अनुभूति सिर्फ अनुभव ही नहीं किन्तु श्रीअरविन्द की स्वयं श्री कृष्ण की अवस्था थी। श्री कृष्ण ने स्वयं श्रीअरविन्द में शरीर में प्रकट होकर यह पूर्णयोग की साधना अतिमानस के अवतरण के लिए की। 'सावित्री' श्रीअरविन्द की श्री कृष्ण बनी हुई आत्म चेतना की उत्क्राति की स्वयात्रा है। प्रतीकात्मक निर्देशन के लिए ही श्रीअरविन्द ने 'सावित्रीः एक आख्यान एवं प्रतीक' कहा है।

अश्वपति की साधना कोरी चेतना से ऊपर उठने की चैत्यगामी की साधना है, चैत्य की उर्ध्वगति की साधना है। चैत्य (Psychic)शब्द का प्रयोग नया नहीं है। यह वेदान्त की गहनता आत्मतत्व की वैज्ञानिक सक्रियता का परिणाम है, वही मन के ऊपर के प्रदेशों की अनुभूतियां बन सकता है। राजा अश्वपति संतानहीन थे। सामान्य मानवजाति की वर्तमान चैतसिक अवस्था ठीक वैसी ही है, उनकी गति अल्प है या नगण्य है। इस गति को ऊर्ध्वगामी करने की साधना की ही आवश्यकता है। चैत्य जागृति के बिना यह संभव नहीं है। श्रीअरविन्द के पूर्णयोग की साधना का यही प्रारंभ बिन्दु है। अगर हम ऊर्ध्वगामी होना चाहते हैं तो हमें चैत्य को ही अपनी जीवन नौका का खेवट बनाना चाहिये। मन की जो भ्रामक गतिविधियां हैं उनको एकाग्रता, चिंतन व ध्यान के मार्ग से, उसका रूपांतरण करते हुए, मन की गहनतम गहराईयों में हमें mindless- space को चरितार्थ करना चाहिए। आज दिन तक मन का मनोविज्ञान प्रकट किया गया, मन की साधना की अवस्था नहीं बताई गई जबकि मन अपनी साधना के लिए परमात्मा की ओर से प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ साधन है। श्रीअरविन्द ने मन की अवहेलना नहीं की है। मन मानवीय प्रकृति का वर्तमान शिखर है, उससे सम्मति लेते हुए, उसकी सारी प्रकृति को जोड़ते हुए चैत्य के प्रति उन्मुख होना व उसको समर्पित होना यही इस जन्म की सर्वोच्च अभिलाषा हो, अभीप्सा हो। मन मनुष्यों की पार्थिव प्रकृति का सूक्ष्म स्वरूप है। मन प्रकृति का स्वामी नहीं है। मन प्रकृति की श्रेष्ठतम गति है, प्रकृति का स्वामी तो 'चैत्य पुरूष' ही है। जब तक यह जाग्रत नहीं होता, तब तक हमें मन का ही साम्राज्य श्रेष्ठ दिखाई देता है। चैत्य की जाग्रति से सबसे पहले मन को अपनी निजी यथार्थ स्थिति का अनुभव होने लगता है। तब मन चैत्य को समर्पित होने की अभीप्सा करते हुए अपने आपको पवित्र बनाता है, स्वयं स्वच्छता की और स्वस्थता की अनुभूति करता है। इस अवस्था में वह जीवन की भ्रामक आसक्तियों को तोड़कर उनसे मुक्त होने का प्रयास जारी रखता है। वर्तमान जीवन में जो लोग श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के प्रति अभिमुख हुए हैं, उन

अश्वपति की साधना कोरी चेतना से ऊपर उठने की चैत्यगामी की साधना है, चैत्य की उर्ध्वगति की साधना है। चैत्य (Psychic)शब्द का प्रयोग नया नहीं है। यह वेदान्त की गहनता आत्मतत्व की वैज्ञानिक सक्रियता का परिणाम है, वही मन के ऊपर के प्रदेशों की अनुभूतियां बन सकता है। राजा अश्वपति संतानहीन थे। सामान्य मानवजाति की वर्तमान चैतसिक अवस्था ठीक वैसी ही है, उनकी गति अल्प है या नगण्य है। इस गति को ऊर्ध्वगामी करने की साधना की ही आवश्यकता है। चैत्य जागृति के बिना यह संभव नहीं है। श्रीअरविन्द के पूर्णयोग की साधना का यही प्रारंभ बिन्दु है। अगर हम ऊर्ध्वगामी होना चाहते हैं तो हमें चैत्य को ही अपनी जीवन नौका का खेवट बनाना चाहिये। मन की जो भ्रामक गतिविधियां हैं उनको एकाग्रता, चिंतन व ध्यान के मार्ग से, उसका रूपांतरण करते हुए, मन की गहनतम गहराईयों में हमें mindless- space को चरितार्थ करना चाहिए।

सभी का यही एक स्वधर्म है। सबसे पहले जीवन में श्रीमाँ को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देनी है। तब मन की भागदौड़ समाप्त होती है व मन (Mindless) की अवस्था त्याग (Rejection) की अवस्था बन सकती है। Aspiration (अभीप्सा), Rejection(त्याग) व Surrender (समर्पण) श्रीअरविन्द के पूर्ण योग के प्रमुख अंग हैं, लेकिन ये सब एक साथ सक्रिय होकर गति करते हैं, और वह गति चैत्य की गति बनती है। चैत्य पुरूष की सक्रियता ही मन से लगाकर भौतिक (जड़) तक की प्रकृति का क्रमशः रूपांतरण करती है जिसे श्रीअरविन्द ने 'रूपांतरण का योग' कहा है। यह रूपांतरण की यात्रा ही उत्क्राति है। इस उत्क्राति से जो चेतना के स्तर पर होती है, स्वरूप की उत्क्राति की यात्रा का सृजन होता है। जन्म जन्मांतर की यही यात्रा व गाथा है। श्रीअरविन्द ने इसे धीमी व पका देने वाली विधि कहा है लेकिन चैत्य के संकल्प से व उसकी गतिशील साधना से यह रूपांतरण ज्यादा तेजी से होता है और अल्प समय में कई जन्मों का कार्य सम्पन्न हो सकता है। श्रीअरविन्द ने चालीस वर्षों की साधना के दौरान श्रीअरविन्द घोष की प्रकृति से ऊपर उठकर योगेश्वर तक की यात्रा एक ही जन्म में संपन्न कर दी, और अपने साथ जुड़े अपने पार्षदों को भी इस मार्ग पर चलना सिखाया व पूरे विश्व की चेतना को नये युग की चेतना के लिए तैयार करने का विज्ञान प्रस्तुत किया। पार्थिव प्रकृति का रूपांतरण संभव है। उसका प्रयोग स्थल पाडिचेरी आश्रम है। माँ ने स्वयं अपनी पार्थिव देह को जगदम्बा की अस्मिता, गरिमा और दिव्यता को आत्मसात करते हुए, शरीर के कोषाणुओं को भी रूपांतरित करने का अभूतपूर्व कार्य किया व जगत् के लिए यह प्रक्रिया स्थिर करते हुए दिव्य तत्व का प्रसाद प्रदान किया। रूपांतरण की यह यात्रा श्री माँ ने, श्रीअरविन्द के सान्निध्य के अवतरण व अपनी देह को रूपांतरित कर, जगत् के लिए एक नयी सापेक्षता का वरदान व प्रसाद प्रदान किया है।

'सावित्री' की साधना ही श्रीअरविन्द और श्री माँ की साधना का ब्ल्यू प्रिन्ट है, और वही जगत् को दी गई परम की प्रसादी है।

श्री अरविन्द ने हम सबको यह रास्ता दिखाया है और हमें इस राजमार्ग का पथिक बनाते हूए सूर्योलोकित पथ 'सावित्री' के रूप में हमें प्रसाद स्वरूप दिया है। ●

मृत्यु पर विजय

मंगेश नादकर्णी

'सावित्री' महाकाव्य के पर्व आठ को 'मृत्यु का पर्व' शीर्षक दिया गया है और यह लगभग दस पन्नों का अकेला सर्ग है। इस सर्ग में हम सत्यवान और सावित्री को जंगल में साथ-साथ देखते हैं। सत्यवान लकड़ी काट रहा है और सावित्री बहुत गौर से उसे एकटक देख रही है। वह जानती है कि यही वह दिवस है जब सत्यवान को मृत्यु का ग्रास बनना है। सहसा ही सत्यवान को अत्यन्त तीक्ष्ण पीड़ा का अनुभव होता है जिसने उसके शरीर को बुरी तरह झकझोर दिया है। वह वृक्ष से नीचे उतर आता है और सावित्री की गोद में सिर रखकर लेट जाता है। दर्द की पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है। वह समझ जाता है कि उसकी मृत्यु का क्षण करीब आ पहुचाँ है। वह सावित्री को पुकारता है- सावित्री ओ सावित्री मेरे ऊपर झुककर उसका मेरा चुम्बन लो। जैसे ही सावित्री झुककर उसका चुम्बन लेती है, वह मर जाता है।

ऐसी भीषण घड़ी में सावित्री ना तो दुःख से अभिभूत होती है और ना ही डर से सिहरती है। एक बृहद् शान्ति उसके अन्दर आती है। उस बियाबान जंगल में चारों ओर घोर निःस्तब्धता है। वह ऊपर मुँह उठाकर देखती है तो सामने 'यमदेव' खड़े हैं। सावित्री उनका सामना करने को प्रस्तुत है। अपने जीवन में आने वाली इस दारुण घड़ी के लिए उसने अपने को तैयार किया था। जैसे ही यमदेवता सत्यवान की आत्मा को देह से खींचते हैं, सावित्री उठ खड़ी होती है।

यमदेव 'शाश्वत महारात्रि' के क्षेत्र में आगे कदम बढ़ाते हैं। सत्यवान की आत्मा और यमदेव की छाया रास्ते पर आगे बढ़ती जाती है। इस लोक के विचित्र दृश्यावली अब एक रहस्यमय और गहन अंधकार में बदल जाती है।

महाभारत में यह प्रसंग-सावित्री और यमदेव के बीच हुआ विवाद एक सामान्य सा प्रभावहीन वार्तालाप है। सावित्री यमदेव के साथ।

आहार

श्री माँ

अगर तुम योग करना चाहते हो तो तुम्हें सभी बातो में चाहे वे छोटी हों या बड़ी, आधिकाधिक यौगिक भाव धारण करते जाना चाहिये। हमारे मार्ग में कामना-वासना का जहा तक संबंध है, उस यौगिक भाव का स्वरूप यह नहीं है कि कामनाओं का जबर्दस्ती निग्रह किया जाये, बल्कि यह है कि उनके प्रति अनासिक्त और समता का भाव रखा जाये । कामनाओं का जबर्दस्ती निग्रह करना (उपवास भी इसी श्रेणी में शामिल है) और उनका स्वच्छंद भोग दोनों एक ही कोटि की चीजें हैं। दोनों ही अवस्थाओं में कामना बनी रहती है एक में वह 'भोग' द्वारा पुष्ट होती है और दूसरी में वह निग्रह के कारण उत्तेजित अवस्था में छिपी पड़ी रहती है। जब अलग कर लेता है, उसकी कामनाओं और क्षुधाओं को अपना समझना अस्वीकार करता है और उनके विषयव में अपनी चेतना में एक प्रकार की पूर्ण समता और स्थिरता बनाये रखने का अभ्यास करता है केवल तभी जाता है। निम्न प्राण भी धीरे-धीरे शुद्ध होता है और स्वयं भी सम और स्थिर हो जाता है। कामना की प्रत्येक लहर को, जैसे ही वह आती है वैसे ही, तुम्हें देखना चाहिये और ठीक वैसे ही शातिं और अविचल अनासक्ति के साथ देखना चाहिये जैसे कि तुम अपने से बाहर होने वाली किसी घटना को देखते हो और फिर उसे अपने चेतना से बहिष्कृत कर बाहर चले जाने देना चाहिये तथा उसके स्थान में क्रमशः सत्य-क्रिया, सत्य-चेतना स्थापित करनी चाहिये।

आहार के लिये आसक्ति का होना, उसके लिये लोभ और बेचैनी का होना, जीवन में उसे आवश्यकता से अधिक महत्व की चीज बना देना-यह सब यौगिक भाव के विपरीत है। इस बात का ज्ञान होना कोई बुरी बात नहीं है। कि अमुक चीज रसेन्द्रिय के लिये सुखदायी हैः केवल उस वस्तु के लिये ना तो कामना होनी चाहिये ना बेचैनी, ना तो उसके प्राप्त होने पर उल्लास होना चाहिये ना उसके ना मिलने पर अप्रसन्नता या खेद ही होना चाहिये। जब आहार स्वादिष्ट ना हो तो अथवा प्रचुर मात्रा में प्राप्त ना हो तो उससे विक्षुब्ध या असंतुष्ट ना हो साधक को सम और स्थिर बने रहना चाहिये- जितनी आवश्यकता हो बस उतना ही निश्चित मात्रा में भोजन करना चाहिये, उससे ना तो कम ना अधिक । भोजन के लिये ना तो उत्सुकता ही होनी चाहिये और ना अरूचि ।

भोजन के विषय में बराबर सोचते रहना और इस तरह मन को कष्ट देते रहना भोजन की आसक्ति से छुटकारा पाने का एकदम गलत रास्ता है । भोजन के प्रश्न को, बस, जीवन में उसका जो उचित स्थान है, वहा एक विषय पर एकाग्र करो ।

आहार के प्रश्न को लेकर अपने मन को व्यग्र मत करो। उचित मात्रा में (ना बहुत अधिक ना अधिक कम) आहार ग्रहण करो। उसके लिये ना तो लोभ हो ना घृणा, बस शरीर की रक्षा के लिये श्री माँ के दिये हुए एक साधन के रुप में उचित भाव के साथ, अपने अंदर विद्यमान भगवान् को समर्पित करते हुए उसे ग्रहण करो। फिर उससे तामसिकता नहीं उत्पन्न होगी।

स्वाद को, रस को एकदम दबा देना इस योग का कोई अंग नहीं है । जिस चीज से छुटकारा पाना है वह है प्राण की वासना और आसक्ति, आहार की लालसा, अपनी पसंद के अनुसार भोजन मिलने पर उसे खुशी से अनुचित महत्व प्रदान करना । अन्य बहुत-सी बातों की तरह इस विषय में भी समता ही हमारी कसौटी है।

आहार का त्याग करने का विचार एक गलत प्रेरणा है। तुम थोड़ी मात्रा में भोजन करके रह सकते हो, पर एकदम भोजन किये बिना नहीं रह सकते-ऐसा तो केवल थोड़े समय तक ही किया जा सकता है। याद रखो गीता की बात- नात्यश्नतस्तु योगस्ति न चैकान्तमनश्नतः —योग उसके लिये नहीं है जो बहुत अधिक भोजन करता है और ना उसके लिये है जो एकदम कुछ खाता ही नहीं। प्राणशक्ति एक और ही चीज है —बिना भोजन किये उसको प्रचुर मात्रा में अपने अंदर खींचा जा सकता है और बहुधा उपवास के समय उसकी वृद्धि ही होती हैः परंतु भौतिक

तत्व, जिसके बिना जीवन का, प्राण का अवलंब ही नष्ट हो जाता है एक दूसरी ही चीज है।

प्रकृति की इस वृत्ति (आहार-लिप्सा) की ना तो उपेक्षा करो ना इसे बहुत अधिक महत्व ही दो इसका भी समुचित समाधान करना है, इसे शुद्ध करना है और इस पर प्रभुत्व स्थापित करना है पर यह सब करना है इसे अत्यधिक महत्व दिये बिना ही । इस पर विजय प्राप्त करने के दो मार्ग हैं – एक है अनासक्ति का मार्ग, भोजन को केवल शरीर की एक आवश्यकता के रुप में देखने और उदर तथा रसेन्द्रिय की प्राणमयी तृप्ति को कोई महत्वपूर्ण बात ना समझने का अभ्यास करनाः दूसरा मार्ग है किसी प्रकार का आग्रह या आकाक्षा ना रख जो कुछ भी खाने को मिल जाये उसे ग्रहण करने और उसी में (चाहे दूसरे लोग उसे अच्छा कहें या बुरा) एक समान रस लेने में समर्थ होना –वह रस केवल भोजन के लिये भोजन का नहीं होता, बल्कि विश्व व्यापी दिव्य आनंद का होता है।●

पुनर्जन्म

भागवत आनन्द हमारे भीतर शीघ्र नहीं होता है परिपूर्ण,
ना ही एक जीवन के साथ हमारा होता है अन्त;
हममें आसीन हैं हमारी आत्माएँ चिरकाल पर्यन्त
एवं सुनिश्चित है एक अनन्त आनन्द।

हमारी आत्माएँ एवं स्वर्ग हैं एक समान महत्तर
और एक तिथिविहीन जीवन के हम अधीश्वर;
'महाप्रकृति' के अनन्त बीज, अपरिमित साँचे,
जो नही हुए थे पृथ्वी पर निर्मित,

ना ही वे करते हैं पृथ्वी पर अपनी भस्मों की वसीयत,
किन्तु अपने में ही हैं वे पूर्ण समाहित।
एक चिरकालीन भविष्य भरपूर है तेरे इस आघात तले,
एक चिरन्तन अतीत का बालक।

पुरानी स्मृतियाँ पुनः आती हैं समीप, आक्रान्त करते हैं पुराने स्वप्न,
वे खोए हुए लोग जो कभी रहे हैं हमारे परिचित,
दंतकथाएँ एंव चलचित्र; किन्तु उनकी आकृतियाँ, हमें करती हैं भ्रमित-
वे खड़े हैं कहीं एकाकी एवं रिक्त।

तो भी हमारे सभी स्वप्न एवं आशाएँ हैं ,स्मृतियों के खजाने,
हैं भविष्यवाणियाँ जिनका हम लगाते हैं गलत अर्थ,
किन्तु वह जिसने जीवन अथवा द्रश्यावलियों का किया है मूल्यांकन
उसका अनगिन स्वर्ग कर सकते है वर्णन।

ध्यान और प्रगति

श्रीमाँ

प्र.- क्या ध्यान करने के लिये अधिकाधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती क्या यह सच नहीं है कि जितनी अधिक देर तक कोई ध्यान करता है उतनी अधिक प्रगति होती है?

उ.- ध्यान में बिताये गये घंटे आध्यात्मिक प्रगति का प्रमाण नहीं हैं। आध्यात्मिक प्रगति का प्रमाण तो तब होगा जब यह अवस्था आ जाये कि ध्यान करने के लिये तुम्हें किसी प्रकार का प्रयास ही ना करना पड़े, ध्यान को रोकने के लिये भले ही प्रयास की आवश्यकता हो। तब ऐसी अवस्था हो जाती है कि ध्यान को रोकना कठिन हो जाता है। भगवान के चिंतन को रोकना, साधारण चेतना में नीचे उतरना कठिन हो जाता है। जब भगवान में एकाग्रता तुम्हारे जीवन की परम आवश्यकता बन जाये, जब तुम उसके बिना रह ही ना सको, तुम चाहे किसी काम में क्यों ना लगे रहो, जब यह अवस्था स्वभाविक रूप से रात-दिन बनी रहे – तब समझना चाहिये कि निश्चित रूप से तुम्हारी प्रगति हुई है, तुमने वास्तविक उन्नति की है। तुमसे जो अपेक्षा की जाती है वह है चेतना। यही एकमात्र आवश्यकता है –भगवान् के बारे में सदा सचेतन रहना ।

प्र.- पंरतु क्या ध्यान में बैठना अनिवार्य संयम नहीं है और क्या इससे भगवान् के साथ अधिक प्रगाढ़ और केन्द्रित एकता नहीं आती

उ.- हो सकता है । परंतु हमें कोरा संयम अभीष्ट नहीं है । हम चाहते हैं कि प्रत्येक कर्म करते समय, प्रत्येक क्षण, हमारी समस्त क्रियाओं में और प्रत्येक गति में, हमारी चेतना भगवान् में केन्द्रित रहे । यहां कुछ साधक ऐसे हैं जिनसे ध्यान करने को कहा गया है, किंतु ऐसे साधक भी हैं जिन्हें किसी प्रकार का ध्यान करने को नहीं कहा गया । पंरतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ध्यान ना करनेवालों की प्रगति नहीं हो रही है । वे भी एक साधना करते हैं, किंतु वह दूसरे प्रकार की साधना है । भक्ति और आत्मोत्सर्ग के भाव के साथ कार्य करना भी आध्यात्मिक साधना है । अंतिम उद्धेश्य यह है कि केवल ध्यान में ही नहीं बल्कि प्रत्येक क्रिया में भगवान् के साथ सतत एकता का अनुभव किया जाये ।

कुछ लोग ऐसे हैं जो ध्यान में बैठते हैं तो एक ऐसी अवस्था में चले जाते हैं जिसे वे बहुत ही सुंदर और आनंदमय समझते हैं । वे इस अवस्था में आत्म-संतोषपूर्वक बैठे रहते हैं और जगत् को भूल जाते हैं किंतु यदि उनके ध्यान में कोई बाधा पंहुचे तो उस अवस्था में से क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर निकलते हैं, क्योंकि उनके ध्यान में बाधा पड़ी । यह ऐसे भी है कि जो ऐसा आचरण करते हैं मानों उन्हे लगता हो कि यह ध्यान का कर्ज़ा चुकाने के लिये है ये उन लोगों की तरह हैं जो सप्ताह में एक बार गिरजाघर हो आते हैं कि उन्होंने भगवान् का सारा पावना चुका दिया ।

यदि तुम्हें ध्यान करने के लिये प्रयत्न करना पड़ता है तो अभी तुम आध्यात्मिक जीवन जी सकने की अवस्था से बहुत दूर होः जब ध्यानवस्था से बाहर निकलने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता हो तब सचमुच तुम्हारा ध्यान इस बात का संकेत हो सकेगा कि तुम आध्यात्मिक जीवन जी रहे हो ।

हठयोग और राजयोग जैसी कुछ ऐसी साधनाएं भी हैं जिनका अभ्यास करते हुए भी हो सकता है कि साधक का आध्यात्मिक जीवन से कोई संबंध न हो । अधिकतर हठयोग द्वारा शरीर पर और राजयोग द्वारा मन पर संयम हो जाता है । पंरतु आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने का अर्थ है भगवान् में गोता लगाना, ठीक उसी तरह जैसे कोई समुद्र में कूद पड़े । और यह भी केवल आंरभ है, अंत नहीं क्योंकि गोता लगाने के बाद तुम्हें भगवान् में निवास करना सीखना होगा । यह कैसे किया जाये तुम्हें सीधे कूद पड़ना चाहिये, सोचे बिना मै कहां गिरूंगा, मेरी क्या दशा होगी तुम्हारे मन की झिझक ही है जो तुम्हें रोकती है । तुम्हे अपने-आपको छोड़ देना चाहिये । यदि तुम समुद्र में गोता लगाना चाहो और साथ-ही-साथ यह सोचते रहो, कि कहीं आस-पास कोई पत्थर या चटटान ना हो, तो तुम गोता नहीं लगा सकोगे।

श्रीमाँ से हमारे प्रश्न और उनके उत्तर

प्र.- क्या आप योग के विषय में हमसे कुछ कहेंगी?

तुम योग-साधना किसलिये करना चाहते हो शाति और स्थिरता की प्राप्ति के लिये मानवजाति की सेवा के लिये, इनमें से कोई भी उघेश्य यह बताने के लिये काफी नहीं है कि तुम इस योग-मार्ग के लिये हो।

यह कि तुम्हें जिस प्रश्न का उत्तर देना है वह क्या भगवान् ही तुम्हारे जीवन के परम सत्य हैं, यहा ंतक कि तुम उनके बिना रह ही नहीं सकते क्या तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान् ही हैं और उनके बिना तुम्हारे जीवन का को कोई अर्थ नहीं है यदि ऐसा हो तभी कहा जा सकता है कि अंदर इस योग-मार्ग के लिये पुकार है।

सबसे पहली आवश्यक चीज है-भगवान के लिये अभीप्सा । और दूसरी बात है इस अभीप्सा को सतत बनाये रखना, उसे सदा जीवंत, ज्वलंत और जाग्रत् रखना । और इसके लिये जिस बात की आवश्यकता है वह है एकाग्रता – भगवान् पर एकाग्रता – जो उनके सकंल्प और अभिप्राय के प्रति पूर्ण और निरपेक्ष आत्म-समपर्ण के भाव से की गयी हो ।

हृदय-केन्द्र में अपने-आपको एकाग्र करो । हृदय में प्रवेश करो, अपने अंदर जाओ, गहराई में उतरो और दूर जहा ंतक तुम जा सको, जाओ । अपनी चेतना के बाहर बिखरे हुए तारों को एकत्र कर लो, उन्हे समेंट कर अंदर डुबकी लगाओ और तह में जाकर बैठ जाओ ।

वहा ंहृदय की गंभीर शाति में एक अग्नि जल रही है । यही है तुम्हारे अंतर में रहने वाले भगवान् का दिव्य अंश – तुम्हारी सत्य सत्ता (हृत्पुरूष) । इसकी आवाज सुनो और इसके आदेश का पालन करो । एकाग्रता के लिये दूसरे केन्द्र भी हैं, उदाहरणस्वरूप, एक केन्द्र मस्तिष्क के ऊपर है (सहस्त्रार), दूसरा भू-मध्य में है (आज्ञा)। इनमें से हर एक किसी परिणाम पर पहुंचाता है । परंतु केन्द्रीय पुरूष का स्थान हृदय है यहीं से रुपातंर के लिये समस्त गतिशीलता, वेग और उपलब्धि की शक्तिया ंनिकलती हैं।

सम्पूर्ण समर्पण

तुम जितना अधिक स्वंय को भगवान् को देते हो उतने अधिक पूर्ण रूप से, निरंतर, प्रत्येक क्षण, वे तुम्हारे सभी विचारों में, तुम्हारी सभी आवश्यकताओं में तुम्हारे साथ रहते हैं, और ऐसी कोई अभीप्सा नहीं है जिसका उत्तर तुरंत ना मिलता हो। और तुम्हारे अन्दर पूर्ण, सतत घनिष्ठता, पूर्ण निकटता का भाव रहता है। यह ऐसा है मानों तुम साथ लिये हो... मानों भगवान् हर वक्त तुम्हारे साथ हों; तुम चलो और वे तुम्हारे साथ-साथ चलते हैं, तुम सोओ और वे तुम्हारे साथ-साथ सोते हैं, तुम खाओ और वे तुम्हारे साथ-साथ खाते हैं, तुम सोचो और वे तुम्हारे साथ-साथ सोचते हैं, तुम प्रेम करो और वे वही प्रेम हैं जो तुम प्राप्त करते हो। लेकिन इसके लिये तुम्हें स्वयं को पूरा-पूरा, समग्र-भाव से, अनन्य भाव से देना चाहिये, कुछ भी बचाकर ना रखो, अपने लिये कुछ भी ना रखो और अपने पास कुछ भी ना रखो, और ना कोई चीज बिखेरो हीः तुम्हारी सत्ता में छोटी-से-छोटी चीज भी जो भगवान् को नहीं दी गयी है अपव्यय है;- यह तुम्हारे आनन्द का अपव्यय है, यह ऐसी चीज है, जो तुम्हारे सुख को उतनी मात्रा में कम कर देती है, और जो कुछ तुम भगवान् को नहीं देते उसे मानों तुम भगवान् अपने-आपको तुम्हें दे सकें, इस संभावना के मार्ग में खड़ा कर देते हो। तुम उन्हें अपने नजदीक, हमेशा अपने साथ अनुभव नहीं करते क्योंकि तुम उनके नहीं हो, क्योंकि तुम सैंकड़ों अन्य वस्तुओं और व्यक्तियों के हो; तुम्हारे विचार में, तुम्हारी क्रिया में, तुम्हारी भावनाओं में, तुम्हारे आवेशों में. . . लाखों ऐसी चीजें हैं जो तुम उन्हें नहीं देते, और इसीलिये उन्हें हमेशा अपने निकट अनुभव नहीं करते, क्योंकि ये सब चीजें तुम्हारे और उनके बीच इतने सारे परदे और दीवारें हैं। लेकिन अगर तुम उन्हें सब कुछ दे दो, अगर तुम कुछ भी बचाकर ना रखो, तो वे हमेशा पूरी तरह, तुम जो कुछ भी करते हो, जो कुछ भी सोचते हो, जो कुछ भी अनुभव करते हो, उसमें हमेशा, हर क्षण, तुम्हारे साथ होंगे। लेकिन इसके लिये तुम्हें अपने-आपको पूरी तरह देना होगा, कुछ भी बचाकर ना रखना होगा; हर छोटी-सी चीज जिसे तुम बचाकर रखते हो एक ऐसा पत्थर है जिसे तुम अपने और अपने भगवान् के बीच दीवार खड़ी करने के लिये रखते हो।●

वह आनन्दमय अद्भुत जगत् हमारे द्वार पर उतर आने के लिए हमारे आह्वान की प्रतीक्षा कर रहा है।

-श्रीमाताजी

भगवत्कृपाः एक मुसीबत!

सुरेन्द्रनाथ जौहर

नारद मुनि की एक और बात आ गयी। उनका चक्कर स्वर्ग से पृथ्वी पर और पृथ्वी से स्वर्ग पर ही रहता था। विमान में आना-जाना, देर क्या लगती थी। लेकिन बहुत परेशान थे। स्वर्ग में कोई भी आता ही नहीं था। स्वर्ग के सब शहरों में कोठियाँ, फ़्लैट, मकान खाली पड़े रहते। बेरौनकी हर जगह और सुनसान।

नारद मुनि को यह अच्छा नहीं लगता था। उनको बहुत इच्छा और तड़प होती थी कि स्वर्ग में धरती की तरह रौनक और चहल-पहल होनी चाहिए, लेकिन कोई बस नहीं चलता था और कोई रास्ता नहीं मिलता था।

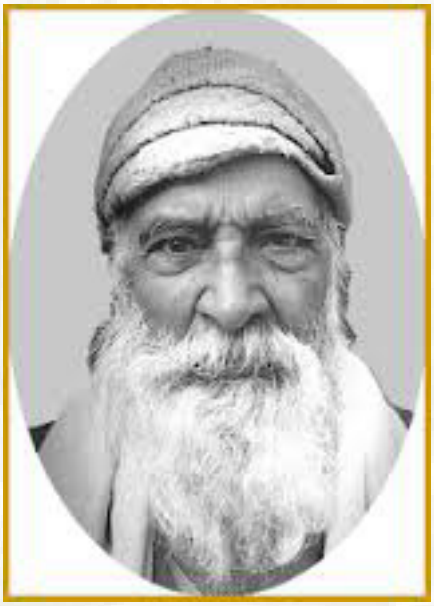

नारद मुनि इस खोज में लगे थे कि इसका कारण क्या है? मन्दिरों, मस्जिदों, गुरूद्वारों और गिरजाघरों में जो लोग जाते हैं, वे तो भगवान् के बहुत ही भक्त होंगे और वे तो स्वभावतः ही स्वर्गलोक में आने के इच्छुक होंगे। उनको शायद कोई रास्ता बताने वाला नहीं है।

यह विचार मन में बैठ गया और अपने विमान में बैठ कर धरती के तीर्थस्थानों- मथुरा, वृन्दावन, काशी, पुरी, बद्रीनाथ, रामेश्वर में आना-जाना और अध्ययन शुरू किया और भक्तों की 'रिसर्च' खोज शुरू की। हज़ारों लोग मन्दिरों में आते, चढ़ावा चढ़ाते, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन करते और भगवान् से प्रार्थना करते कि 'हे भगवान्! तू हमें शरण दे। अपने चरणों में बुला ले।' हर तीर्थस्थान, हर मन्दिर में भगवान् की स्तुति, भगवान् की महिमा और भगवान् के दर्शनों की इच्छा की पूर्ति के लिए प्रार्थना होती रहती। नारद मुनि बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न हो गये और कई वर्षों की खोज के बाद उन्हें यह निश्चय हो गया कि बीज रूप से लाखों लोग स्वर्ग में आने के योग्य हैं और बहुत इच्छुक भी। बस उनको रास्ता बताकर लाने वाला कोई नहीं है।

ब्रह्माजी के पास आकर अपनी खोज की पूरी रिपोर्ट दी। ब्रह्माजी ने शान्त स्वभाव से कहा कि, 'बेटा! उन हजारों-लाखों प्राणियों में से एक-दो नमूने ले आओ और यदि हमने स्वीकृत (Approve) कर दिया तो फिर तुम्हें हजारों-लाखों लोगों को लाने की स्वीकृति दे देंगे।' नारद अपनी इस भारी करतूत (Achievement) कारामात पर बहुत खुश हुए और आये धरती पर एक-दो 'सैम्पल' ले जाने के लिए।

मन मे सोचा कि छाँटकर अच्छे से अच्छे नमूने लेकर जायें जिससे पिताजी बहुत प्रसन्न हों। सो तीर्थराज काशी में उतरे और पहले उस मन्दिर में गये जहाँ एक सेठजी वर्षों से घण्टों पूजा करने आते थे और मस्ती में झूमा करते थे और जिस मन्दिर में घण्टे-घड़ियालों की ध्वनि हर समय गूँजा करती थी। सेठजी का मन्दिर से उनके निवास स्थान तक पीछा किया और 'नारायण! हरि नारायण!' करते अन्दर पहुँचे। सेठजी ने बहुत सत्कार से बैठाया। बहुत अच्छा भोजन कराया। गाय का दूध पिलाया और महाराज से भगवद्-कृपा के लिए प्रार्थना की। नारद महाराज झट बोले- 'आप को भगवान के पास ले जाने के लिए तो मैं आया ही हूँ। वर्षों से आपको भगवान् की भक्ति में डूबा देखता था और इसीलिए मैं सबसे पहले स्वर्ग में ले जाने के लिए आप के पास आया हूँ। अभी फौरन बैठिये मेरे विमान में!' पहले तो सेठजी बहुत खुश हुए परन्तु कुछ ही

क्षणों में कहने लगे कि, 'कुछ समय दीजिये ताकि मैं अपने आवश्यक कार्य और दायित्व निबटा लूँ।' नारद जी बोले- 'फिर मैं कब आऊँ?' सेठजी ने कहा- 'एक सप्ताह बाद बड़ी खुशी से आ जाइये।'

एक सप्ताह के पश्चात् जब नारद प्रकट हुए तो सेठजी नम्रतापूर्वक कहने लगे- मैंने अपने बहुत काम तो निबटा लिये हैं परन्तु पुत्र है और जवान है। उसकी शादी तो कर जाऊँ। आप कुछ महीनों का और अवकाश दीजिए।' नारद जी को कुछ निराशा तो हुई परन्तु कुछ चारा नहीं था। इस बीच वे दूसरे भक्तों के पास जाते तो रहे परन्तु जब भगवान् के सबसे बड़े प्रेमी की यह स्थिति थी तो दूसरों का कहना ही क्या।

इतनी देर में कुछ महीने बीत गये और सेठजी के लड़के की शादी भी हो गयी। नारद जी फिर प्रकट हुए। तभी सेठजी ने हाथ जोड़कर कहा कि 'मेरे पुत्र की शादी तो सम्पन्न हो गयी है परन्तु उसे उच्चतर शिक्षा और आधुनिक उद्योग तथा व्यापार का बहुत शौक था, वह तुरन्त दो साल के लिये अमेरिका चला गया है। अब बहु अकेली है। जब तक वह वापस नहीं आ जाता मैं कैसे आप के साथ जा सकता हूँ। अतः कुछ सालों के लिए तो आप मुझे क्षमा कीजिये!

नारद जी निराशा (Frustration) में धरती पर ही स्थान-स्थान पर घूमते रहे और अपने पिता ब्रह्माजी के पास जाने का साह नहीं हुआ। बहुत देर हो जाने के कारण ब्रह्माजी भी चिन्ता में थे।

कुछ वर्ष और बीत गये और नारद सेठजी के पास फिर पहुँचे। सेठजी कहने लगे- 'अब तो मेरा पोता हो गया है और मेरे बेटे को इतने लम्बे-चौड़े व्यापार के कारण घर में रहने की बहुत फुर्सत ही नहीं मिलती। बहू-पोते और घर की देखभाल की बहुत ज़िम्मेदारी तो मेरे ही ऊपर है। यह भी मेरा धर्म है। मैं इन लोगों को छोड़कर कैसे जा सकता हूँ? तो भी आपको इस तरह से निराश तो नहीं कर सकता। मैं सोचूँगा और सम्भवतः कोई ना कोई रास्ता निकालने की चेष्टा करूँगा।' नारद जी कहने लगे कि 'मैं तो अब इन्तज़ार करते-करते घूम-घूम कर थक गया हूँ और खाली विमान लेकर वापस भी लहीं जाना चाहता। तो जब तक आप कोई रास्ता नहीं निकालते तब तक धरना देकर आप के ही स्थान पर रहूँगा।' सेठजी के पास कोई चारा नहीं था। डरते भी थे कि कहीं भगवान् नाराज़ ही ना हो जायें। नारद जी को अपने घर में बहुत अच्छा स्थान दिया और उनके खाने-पीने, रहने-सहने का उत्तम प्रबन्ध कर दिया।

सेठजी का मन्दिर आना-जाना, पूजा-पाठ सब खत्म हो गया। नारद जी के दर्शन तो रोज़ हुआ ही करते थे और रोज़ बातचीत भी हुआ करती थी। एक दिन छटपटाते हुए आये और कहने लगे कि, 'महाराज! मेरे साथ तो बहुत अनर्थ हो गया है। सरकार ने अस्सी लाख रूपया आयकर (Income tax) लगा दिया है। अब यह झंझट और वकीलों के पास आना-जाना और अपीलें तो वर्षों तक नहीं निपट सकतीं। और यह सारा झगड़ा और इन्कम-टैक्स का बोझ मैं अपने बेटे के ऊपर डाल कर स्वर्ग-सुख को जाना भी नहीं चाहता। इसलिए मेरा आपसे हाथ जोड़ कर निवेदन है कि आप अभी तो अपने स्थान स्वर्गलोक को लौट जाइये और फिर कभी इधर को आना हो तो दर्शन दीजियेगा।'

इस बीच ब्रह्माजी का भी सन्देश आया कि, 'आप को गये युग बीत गये हैं, तुरन्त लौटें। नारद जी वापस लौटे।' परन्तु शर्म के मारे बहुत पूछने पर भी अपने पिताजी को कोई उत्तर ना दे सके। ब्रह्माजी ने सन्तोष किया कि नारद कभी ना कभी अपने आप अपनी वर्षों की साहसिक यात्रा (Adventure) का ब्योरा देंगे।

काफ़ी वर्षों बाद नारद ब्रह्मलोक से एकाएक गायब हो गये और आखिरी प्रयत्न के लिये सेठजी के पास फिर पहुँचे। वे ज्यों ही सेठजी के कोठी के अन्दर गये, तो सेठजी के तो उन्हें देखकर होश ही उड़ गये और गुस्से से झुंझला कर बोले कि, 'आप को संसार भर में और कोई आदमी नहीं मिलता कि मेरे ही पीछे पड़ गये हैं?'

यह है संसार की हालत। गोबर के कीड़े को गोबर में ही मज़ा आता है। वह उसमें से निकल कर मानव नहीं बनना चाहता।●

अहंकार के शासन से पीछा छुडाने का सबसे अच्छा उपाय है, चैत्य को पाना, जो मानव सत्ता में भगवान् का यंत्र है।

-श्रीमाताजी

अनन्त माँ प्रणाम

विमला गुप्ता

तुम अद्भुत थीं, अपूर्व थीं माँ
तुम अद्वतीय थीं, अनुपम थीं माँ
अपनी लघु देह में तुमने किया था धारण
महाप्रकृति के अनन्त वैचित्रयों को
उसके अगम, अगोचर विषम महासत्य को।
तुम्हारे पार्थिव जीवन की एक-एक गति,
उसका एक-एक प्रकम्पन,
तुम्हारे अनन्य सुन्दर मुख की प्रत्येक भाव-भंगिमा,
तुम्हारे स्पर्श की रोमांचक एवं मधुर ऊष्मा,
मानों दिव्य ज्ञान की थीं अनन्त सूर्य-रश्मियाँ

जिन्हें तुमने अथक अश्रान्त, अविराम, प्रत्येक मुहूर्त किया था विकीर्ण इस भूतल पर, इसके अतल अँधेरों में। उनमें प्रवेश हेतु किये थे अनेक झरोखे निर्माण।

माँ तुमने 'अवचेतना' की निम्न मूल प्रकृति को
उच्चतम पराप्रकृति से जोड़ने हेतु
मध्यवर्ती लोकों के अनेक अपरिचित,
अदृश्य एवं गहरे खन्दकों पर
किया अनन्त सेतुओं का निर्माण।

माँ तुम अनन्त प्रज्ञामयी, प्रकाशमयी परम दिव्य सत्ता थीं। तुमने मानव-मन एवं जीवन की दीर्घकालीन आदिम प्रवृतियों को,
उसकी कितनी ही विभ्रातियों एवं ग्रंथियों को,
उसकी चिर तृष्णाओं एवं अतृप्तियों को,
एवं उसकी अन्तहीन एवं लक्ष्य-हीन भटकती कामनाओं को,
अपने प्रखर ज्ञान की वाणी से,
अपने वात्सल्य एवं प्रेम के आश्वासन से
आत्म-अनुशासन एवं नियंत्रण के महत्व का दिया दर्शन

और जीवन के सच्चे प्रयोजन का लक्ष्य दिखाया!
माँ, तुमने अपने बालकों के हर बढ़ते कदम को,
सही दिशा एवं राह दिखायी
सब दिशाओं में नन्हे-नन्हे सूर्यों का किया निर्माण,
तथा सदैव जागरूक, सतर्क रहने एवं
प्रगति देने का दिया महामंत्र,
और स्वयं अपने परामर्शों का साक्षात् उदाहरण बनकर
हमें अंतिम विजय का दिया विश्वास एवं आश्वासन।
किन्तु हम कितना सीखे?
हमने तुम्हारा कितना कहा माना?
वर्ष पर वर्ष बीतते गये हैं,
हम प्रयासहीन विफलता से शंकित रूके हुए हैं।
तुम्हारा एक मुहूर्त भी कभी व्यर्थ नहीं गया,
तुम अपने हर बालक के जटिल प्रश्नों का उत्तर देती रहीं,
और हम अभी भी अनिश्चित और अक्षम बने हुए हैं,
नहीं लाँघ पा रहे हैं, तुम्हारे निर्मित सेतुओं को।
जिन पगडंडियों के काँटे तुमने अपनी उँगलियों से
उखाड़ दिये थे
हम नहीं कर पा रहे हैं उनकी पहचान
और अभी तक उन्हें नहीं ढूढ़ पा रहे!
माँ! तुम स्वयं एक शाश्वत पुकार थीं, एक आहान थीं,
ब्रह्माण्ड के ह्रदय से उभरी एक प्रर्थना थीं।
माँ! अब तुम प्रत्यक्ष नहीं हो
देह की श्वासों-प्रश्वासों में नहीं हो बद्ध,
किन्तु तुमने अपनी उपस्थिति के अनगिन तंतुओं को
बुन दिया है नव-नव रूपों में,
नवरसों में, चतुर्दिक फैले जड़-चेतन पदार्थों में।
अब तुम एक विराट देह में हो गयी हो आविर्भूत।
हमारी अल्पज्ञ निम्न प्रकृति की जीवन प्रणाली को,
कर रही हो परिवर्तित, परिष्कृत, अविराम,
अब हम तुम्हें आते-जाते,
बार-बार, प्रत्येक क्षण कर सकते हैं प्रणाम!
अनन्त प्रणाम!●

शान्ति के लिए प्रार्थना

माताजी

सकल धरा पर शान्ति हो, शान्ति हो,
सब लोगों को साधारण चेतना से छुटकारा मिले और सभी भौतिक पदार्थों के
प्रति अपनी आसक्ति से मुक्त हों,
प्रभु तेरी दिव्य उपस्थिति का बोध उनमें जागृत हो
वे तेरी सर्वोच्च चेतना से स्वयं को जोड़ें, उससे संयुक्त हों, और उस असीम शान्ति का
रसास्वादन कर सकें जो इस उत्कृष्ट चेतना से निरन्तर प्रवाहित होती है,
हे नाथ तुम हमारी सत्ता के एकमेव अधिपति हो, तुम्हारा नियम ही हमारा नियम हो,
हम पूरी क्षमता से अपनी चेतना को तेरी शाश्वत चेतना से एकरूप हो जाने की
अभीप्सा करते हैं जिससे हम तेरे कार्य को प्रत्येक क्षण एवं प्रत्येक अवस्था में सम्पन्न कर सकें;
प्रत्येक पदार्थ में उद्घाटित कर सकें,
हे प्रभु हमें सब प्रकार की असंगत एवं अप्रासंगिक चिन्ताओं से मुक्त करो,
परिस्थितिओं के प्रति जो हमारा अज्ञानयुक्त दृष्टिकोण है उससे हमें छुटकारा मिले
ऐसी कृपा कर हम आगे से तेरी दृष्टिनुसार देखना सीखें और तेरी ही इच्छानुसार कार्य करना सीखें
तू अपने दिव्य प्रेम के जीवन जागृत प्रकाश-स्तम्भ के रूप में हमें रूपान्तरित कर।
मैं अपनी सत्ता की पूर्ण भक्तिभावना के साथ सहर्ष आत्म-समर्पण में तेरे नियम व
विधान को सम्पन्न करने हेतु स्वयं को प्रस्तुत करती हूं, पूर्णतया समर्पित करती हूं।
सकल धरा पर शान्ति हो, शान्ति हो।

xxxxxxxxxxxxxx

माताजी

श्री कपाली शास्त्री

माताजी को अपने हृदय के भीतर सदैव अनुभव करना अपने अस्तित्व को आनन्द एवं उन्नत बनाना है।

श्री माँ एक ही स्वरूप नहीं किन्तु अलग अवसरों पर अनेक रूप हैं।

इस भौतिक देह की पृष्ठभूमि में माताजी के अनेक रूप एवं शक्तियाँ हैं तथा सम्भावनाएँ हैं।

शिखर पर माताजी जन्म, संघर्ष एवं भाग्य के ऊपर खड़ी हैं। केवल उन्हीं के हाथ कालरूपी ड्रैगन के मूल आधार को परिवर्तित कर सकते हैं।

माताजी चरम् लक्ष्य है, प्रत्येक तत्व उनमें निवासित हैं यदि उनको पा लिया तो मानों सब कुछ प्राप्त कर लिया है, यदि तुम उनकी चेतना में रहोगे तो हर तत्व स्वयं को उद्घाटित कर देगा।

श्री माँ परम् शुभ हैं, प्रत्येक वस्तु उनमें सन्निहित है और स्वयमेव स्वयं को खोल देती हैं।

श्री माता जी का प्रथम भारत आगमन एवं श्री अरविन्द एवं अरविन्द से भेंट

विमला गुप्ता

कहानी यहीं से शुरू होती है, कहानी कोई काल्पनिक नहीं, कोई प्रतीक कथा भी नहीं और ना ही दंतकथा है। बिल्कुल वास्तविक-नाम, रूप, आकार और तारीखों में प्रस्तुत जीवन-गाथा। पृथ्वी इतिहास में प्रथम बार साक्षात् रूप से देहधारी, महायोगी, महावतार, कवि-मनीषी श्री अरविन्द एवं माता वसुन्धरा की कोख से जन्मी [आनन्दमयि,चैतन्यमयि, सत्यमयि परमे] विभूषणों से अलंकृत श्री-माँ। युग वही, काल वही, दशक वही। 15 अगस्त 1872 श्री अरविन्द का जन्म दिवस. 21 फरवरी 1878 श्री माँ का जन्म दिवस। एक की जन्मभूमि शाश्वत आध्यात्मिक ज्ञान की भूमि भारत देश, दूसरी की जन्मभूमि कला, सौंदर्य एवं सामन्जस्य की भूमि फ्रांस देश। एक परात्पर ब्रह्म के सगुण रूप, ईश्वर कोटि के अवतार श्री अरविन्द दूसरी महात्मा अदिति, पराप्रकृति की साक्षात् शक्तिरूपेण देवी माता। अद्भुत संयोग! और केवल युगकाल ही नहीं था वरन् दोनों का लक्ष्य, उद्देश्य, प्रयोजन पद्धति तथा अभिव्यक्ति की क्षमता भी एक समान थी....। अभिव्यक्त की एक पारस्परिक समझ एवं स्वीकृति अद्भुत रूप से एक समान थी। श्री अरविन्द ने अपने 'सावित्री' महाकाव्य में लिखा है:-

'To raise the world to God in deathless light
To bring down the God in the world on earth we came
To change the earthly like in life divine.'

माता जी सर्वप्रथम अपने पति पॉल रिचार्ड के साथ 29 मार्च 1914 को पॉंडिचेरि आंई थीं। उस समय उनकी उम्र 36 वर्ष थी। अपनी उस प्रथम भेंट के विषय में वे लिखती है:-

बेलमपुर से जब हमारी ट्रेन पॉंडिचेरी पहुँची तो मैने देखा कि उस कस्बे के मध्य भाग से श्वेत प्रकाश का एक विशाल पुंज एक स्तम्भ के समान, ऊपर की ओर उठ रहा था, आकाश की ओर, जो इस बात को सिद्ध करता था कि जो कुछ मैं खोज रही थी, जिसके लिए मेरी तलाश थी, वह यहीं पर है और फिर वह प्रकाशपुंज और घना होता गया। उसी दिन हमारी भेंट भी श्री अरविन्द से होनी तय हुई थी। किन्तु प्रथम बार मैं उनसे अकेली ही मिलना चाहती थी। 3 बज कर 30 मिनट पर मैं उनके निवास-स्थान (Old Guest House) पहुँची और मैंने देखा कि श्री अरविन्द जीने के ऊपरी सीढ़ी पर खड़े हुए थे मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठीक उसी भंगिमा रूप में जो मैं 'कल्पना' किया करती थी। उन्होंने अपनी निगाह मेरी ओर घुमाई और मुझे अनुभव हुआ कि मेरी आंतरिक चेतना इस बाह्य साक्षात्कार से एक हो गई, सब कुछ उस एक में विलुप्त हो गया और मैं जान गई कि यही वह आकृति है जिसे मैं 'कल्पना' किया करती थी और 'कृष्ण' कहकर पुकारा करती थी। यह साक्षात इस बात को सिद्ध करने के लिए काफी था कि मेरी जगह और मेरा कार्य यहाँ भारत में उनके साथ विधि-निर्दिष्ट था।'

'उनको देखते ही मैने समझ लिया कि यही है वह दैवीसत्ता, वह दिव्यपुरूष और जब तुम यह समझ लेते हो कि यही दिव्य साकार सत्ता है तब कौन सी शंका-संदेह तुम्हारे अन्दर रह सकते हैं? मैंने स्वयं को श्री अरविन्द के समक्ष पूर्णतया भारमुक्त कर लिया और अपने को प्रफुल्ल एवं स्वतंत्र अनुभव किया। उन्होंने जो कुछ मुझसे कहा, मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया कि वस्तुतः वही सत्य है। मेरे अन्दर कोई शंका उत्पन्न नहीं हुई; जब उन्होंने कहा कि मेरी कुछ मानसिक रचनाएं भ्रामक हैं वे तत्क्षण टूट गईं यद्पि मैं उन्हें 14 वर्षों से जीवन्त बनाकर पाल-पोस रही थी।'

(Glimpses of Mother's Light)

पॉल रिशार एवं माताजी के आगमन के बाद श्री अरविन्द ने उनके सहयोग से एक पत्रिका 'आर्य' का सम्पादन शुरू किया और इसका पहला अंक 15 अगस्त 1914 को प्रकाशित हुआ। उसके पहले पन्ने पर सम्पादकों

के रूप में श्री अरविन्द, पॉल रिशार एवं मीरा का नाम था। उसके विषय को निर्धारित करने वाले दो उद्देश्य थे-

A systematic study of the highest problem of existence.

The formation of a vast synthesis of knowledge harmonizing the diverse religious traditions of humanities.

'आर्य का उद्देश्य था कि वह अब तक उपलब्ध समग्र ज्ञान का एक समन्वय प्रस्तुत करे, चाहे वह ज्ञान पुरातन हो अथवा नवीन, पूर्व का हो पश्चिम का। श्री अरविन्द के आज उपलब्ध सभी महान ग्रन्थ 'आर्य' की देन हैं। वे इसमें हर महीने करीब 65-70 पृष्ठ लिखकर प्रकाशित करते थे। पॉल रिशार व माता जी उसका फ्रेंच संस्करण तैयार करते थे और मदर उसकी सारी अन्य व्यवस्था भी देखती थीं। इसी वर्ष प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया, पूरा यूरोप उसकी चपेट में आ गया। मीरा और पॉल रिशार को वापस फ्रांस लौटना पड़ा और वे भारत से 22 फरवरी 1915 को रवाना हो गए।

माता जी के लिए यह वापसी ऐसे ही थी जैसे मानों किसी ने उनकी प्राणऊर्जा को सोख लिया हो। वे एक वर्ष तक इस मानसिक एवं शारीरिक विषाद की अवस्था में रहीं जो कि हमें उनकी 'प्रार्थना और ध्यान' नामक पुस्तक से जो डायरी के रूप में लिखी गई थी विदित होता है:-

3 मार्च 1915- एकान्त, कठोर, तीव्र एकान्त और ऐसा अनुभव मानों मैं अंधकार के नरक में सिर के बल फेंक दी गई हूँ। अपने जीवन के किसी भी शब्द किसी भी परिस्थिति में मैंने ऐसा अनुभव नहीं किया कि वह सबकुछ जिसे मैं सत्य मानती हूँ उसके एकदम विपरीत हो, जो कुछ मेरे जीवन का सारा तत्व है उसके एकदम विपरीत हो... और मैं प्रार्थना करने लगती हूँ 'हे प्रभो ऐसा मैंने क्या किया है जो तुमने मुझे इस निराशाजनक रात्रि में फेंक दिया है।'

बहुत समय पश्चात किसी ने आश्रम में बातचीत के दौरान माता जी से पूछा था कि वे 1915 में वापस क्यों लौट गईं थीं तो उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया था कि 'उन्होंने (श्री अरविन्द) मुझे रूकने के लिए नहीं कहा था।' 13 मार्च 1916 को वे दोनों पॉल रिशार व मीरा रिशार जापान के लिए रवाना हो गए और अप्रैल में टोक्यो पहुँच गए। जापान का प्रवास मदर के लिए लाभदायक रहा। वहां के सुरूचिपूर्ण कलात्मक वातावरण और मित्रगणों ने मदर के ह्रदय मन को बहुत प्रभावित किया। अपने संस्मरणों में माता जी ने वहां के कई अनुभवों एवं अनुभूतियों का वर्णन किया है.....।

जापान में ही सन् 1919 में उनकी भेंट महाकवि रविन्द्रनाथ टैगोर से हुई थी और टैगोर उनकी प्रखर बुद्धि एवं व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी संस्था 'श्विभारती' शान्तिनिकेतन के लिए माता जी से उसका दायित्व लेने का अनुरोध किया। किन्तु माताजी ने मौन असहमति द्वारा अपना इरादा जाहिर कर दिया क्योंकि वे जानती थीं और ढ़ृढ़ निश्चय कर चुकी थीं कि उनकी जगह और उनका कार्य कहाँ पूर्व निर्धारित है। श्री अरविन्द की प्रसिद्ध कविता 'निमन्त्रण' जैसे उनका आहवान कर रही थीः-

और अंततः पाँच वर्ष फ्रांस व जापान में बिताने के बाद वे दोनों 24 अप्रैल 1920 को जहाज के द्वारा पाडिचेरी पहुँचे। माता जी उस आगमन की याद करते हुए बताती हैं-

'मैं जहाज पर थी, किसी भी अनुभूति की अपेक्षा नहीं कर रही थी, तभी सहसा, अचानक ही पाडिचेरी से दो किलोमीटर दूर, वायुमंडल की भौतिक गुणवत्ता में उसके वातावरण के प्रकम्पनों में इतना परिवर्तन महसूस हुआ कि मैं समझ गई कि हम पाडिचेरी के निकट पहुँच गए हैं और श्री अरविन्द के प्रभामण्डल में प्रवेश कर रहे हैं। यह वस्तुतः एक भौतिक अनुभूति थी, कहूँ ठोस अनुभव था। और मैं विश्वास पूर्वक कहती हूँ कि जिनकी चेतना किसी एक निश्चित स्तर तक जागरूक हो चुकी है वे निश्चय ही इस प्रकार के परिवर्तित वायुमण्डल के प्रकम्पनों को तुरन्त अनुभव कर सकते हैं।'

'और इस प्रकार 24 अप्रैल 1920 से मेरे भारतीय जीवन की शुरुआत हुई जिसके लिए प्रभु मुझे जन्म से ही प्रशिक्षित कर रहे थे।'

'यहां आने पर धीरे-धीरे स्वतः ही हमारी योग साधना में कितने ही जिज्ञासु आ एकत्रित हुए और हमारी दिनचर्या भागवत् जीवन की चर्चाओं में, आन्तरिक और बाहरी जीवन के विभिन्न स्वरूपों व पहलुओं को जानने व उपलब्ध करने के विभिन्न प्रयोंगों के अनुशासन में व्यतीत होती थी।

सन् 1926 में श्री अरविन्द ने आगामी साधना को और अधिक अबाधित करने के लिए पूर्ण एकान्तवास ले लिया था। अब माता जी का कार्यभार इतना विस्तृत, व्यापक और विविध हो गया था कि किसी दैविक शक्ति की प्रेरणा

एवं प्रकाश ही उसे सम्पन्न कर सकते थे, और माँ तो स्वयं उस प्रेरणा और प्रकाश का उद्गम एवं केन्द्र स्थल थीं। वे निरन्तर हम अल्पज्ञ, द्वन्द-पीड़ित, अहंग्रस्त मानव जीवों के लिए अपने को उदाहरण बनाकर यह प्रमाण प्रस्तुत करती रहीं कि हम कितने जिज्ञासु एवं इच्छुक बनें, कितने आग्रही यह जानने के लिए कि वस्तुतः जीवन का लक्ष्य क्या है,? असत् को सत् में, तमस को प्रकाश में, निम्न प्रकृति को उच्चतर प्रकृति में रूपान्तरित करने का तात्पर्य क्या है? वे कौन सी विधियाँ हैं जिनसे इन महत्तर उद्देश्यों को सार्थकता प्राप्त होगी। वे लिखती हैं-

'मनुष्य शरीर ग्रहण करते हैं नहीं जानते क्यों किया? सारा जीवन उसमें बिता देते हैं नहीं जानते क्यों बिताया-फिर उनका शरीर छूट जाता है और वे नहीं जानते क्यों छूटा! और इसी प्रक्रिया को वे बारम्बार जन्मान्तरों तक दुहराते जाते हैं अनिश्चित काल तक बिना जाने बिना अपने से पूछे। और फिर एक अवसर आता है जब उनका अन्तरात्मा उनसे पूछता है, आखिर कब तक? जीवन के उच्च प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए तुम यहाँ आये हो, अपना अवसर मत गंवाओ।'

किन्तु कितने जन्मों की व्यर्थता के बाद यह 'पहला जन्म' उसे प्राप्त होता है। और अज्ञान की इस व्यर्थता को स्वीकारना मानव-मन और उसके जीवन की दिनचर्या से जिसमें वह पूरा जीवन व्यर्थ काट देता है, माँ को मंजूर नहीं था! इसमें सन्देह नहीं, यह प्रयोजन और उसकी प्रक्रिया बहुत कठिन है इस लिए माँ कहती थीं-

'पसन्द नापसन्द के आधार पर अपने उद्देश्य का चुनाव मत करो, वरन् उसका दृढ़ संकल्प से चयन करो और उसे पूरा करने में बाधक तत्वों का बहादुरी से, दृढ़ निश्चय से सामना करो, उन्हें रास्ते से हटा दो। तुम्हारे इस अभियान में मैं तुम्हारे साथ हूँ! किसी अवसाद को, व निराशा को अपनी सत्ता में स्थान मत दो' क्योंकि

'मैं बहुत गहन रूप से तुमसे सम्बाधित हूं, वे जो सूक्ष्मदृष्टि रखते हैं

मुझे अपने अन्दर, अन्तरात्मा में देख सकते हैं।

मेरी शक्ति निरन्तर क्रियाशील है, तुम्हारी सत्ता के केन्द्रीय तत्वों को

वह नए रूपों में ढाल रही हैं तुम्हारी प्रकृति के विभिन्न अंशों को

अनवरत पवित्र बना रही है ताकि तुम यह जान सको

कि तुम्हें अपने किस अंश को परिवर्तित करना है, किसे

उन्नत करना है और किसे निकाल फेंकना है।'

माताजी के कार्य की यही विधि थी, हमारे भीतर के अंधभागों को, जड़ित अभ्यासों एवं आदतों को अपनी अंर्तदृष्टि के प्रकाश में देखना, परखना और तदनुसार कार्य करना। वे अनन्त धैर्य, क्षमता एवं करूणा की अधिष्ठात्री देवी थीं। अपने इस वर्तमान भौतिक अवतरण के अर्धशतक तक उन्होंने निरंतर भागवत कृपा की क्रियाशक्ति को मूर्तिमान करने हेतु उन्होंने असाध्य श्रम किए हैं। हमने अनन्त जन्मों की अभिलाषा के फलस्वरूप उनका दर्शन, स्पर्श एवं सानिध्य पाया। हम उनके अनुगत बालक बनें, उनके कार्य की अभिव्यक्ति हेतु कार्यवाहिक यन्त्र बनें, संघर्ष हेतु सैनिक बनें...। उनका वरद् हस्त, उनकी दिव्यवाणी, उनका अक्षय प्रेम सदैव हमारे साथ है, उनकी विशाल गोद में हमारा स्थान सदैव सुरक्षित रहेगा।

'Love in her was wider than the universe.

The whole world could take refuge in her mighty heart.'●

हृदय केन्द्र में अपने आपको एकाग्र करो। हृदय में प्रवेश करो, अपने अन्दर जाओ, गहराई में उतरो और दूर तक, जितनी दूर तक तुम जा सको जाओ। अपनी चेतना के बाहर बिखरे हुए तारों को एकत्र कर लो, उन्हें समेट कर अन्दर डुबकी लगाओ और तह में जाकर बैठ जाओ।

वहाँ हृदय की गंभीर शान्ति में एक अग्नि जल रही है। यही है तुम्हारे अन्तर में रहने वाले भगवान का दिव्य अंश तुम्हारी सत्य सत्ता (हृत्पुरुष) इसकी आवाज सुनो और इसके आदेश का पालन करो।

-श्रीमाताजी

सब ठीक हो जाएगा

मैं पढ़ने बैठा तो अचानक ही पेट में दर्द शुरू हो गया। थोड़ी देर तो मैंने कोई विशेष परवाह नहीं की पर यह तो बढ़ता ही गया। सोचा क्या करूँ। मैं उठा और चाचाजी के कमरे की ओर चल दिया। चाचाजी हमेशा की तरह कुर्सी पर बैठे पढ़ रहे थे, सामने कई मोटी-मोटी पुस्तकें खुली पड़ी थीं। मैंने पेट पकड़े हुए धीरे से आवाज लगायी- "चाचाजी" उन्होंने मुँह उठाकर मेरी ओर देखा और झटपट पुस्तक रखकर मेरे पास आये और मेरी बाँह पकड़ते हुए पूछा, "क्या हुआ है मंटू?" "पेट में दर्द हो रहा है।" उन्होंने मुझे उठाकर अपने बिस्तर पर लिटा दिया और पेट पर हाथ रखते हुए पूछा, "कहाँ दर्द हो रहा है?" फिर उन्होंने अपनी अलमारी खोली उसमें से अजवायन का सत गर्म पानी में मिलाकर पिला दिया और पेट पर पता नहीं क्या मला। बड़े प्यार से सहलाते हुए कहने लगे, "अभी सब ठीक हो जाएगा मंटू, रो मत, सब ठीक हो जाएगा, भगवान् सब ठीक कर देंगे। और मुझे एक साहसी बालक की कहानी सुनाने लगे। मैंने उनकी तरफ करवट ले ली। वे मेरी पीठ पर हाथ फेरते जाते थे और कहानी कहते जा रहे थे। लगता था चाचाजी की वह कहानी कहीं पढ़ी हुई नहीं है बल्कि उसी समय उसकी रचना हो रही है। वे बहुत अच्छी अच्छी कहानियाँ लिखते हैं। मैं कहानी सुनते-सुनते सो गया। मुझे कुछ पता नहीं। बाद में पता लगा कि माँ मुझे कमरे में न पाकर वहाँ देखने आयी थीं तो चाचाजी ने बाहर ले जाकर सब बता दिया। माँ चली गयीं।"

माँ शाम को मुझसे कहने लगी, "पेट में दर्द हुआ था तो चाचा जी के पास जाने की क्या जरूरत थी? मेरे पास आता, दवा तो मेरे पास रहती है। जब देखो तब चाचा जी की बगल में घुसा रहता है।" माँ के तेवर देखकर मैं कुछ बोला नहीं पर मेरा बाल-मन प्रायः सोचा करता कि ये सारे घर वाले चाचाजी को सनकी, फिलॉसपर, किताबों का कीड़ा आदि क्यों कहते हैं? चाचाजी कभी किसी पर गुस्सा नहीं करते, किसी की शिकायत नहीं करते, नौकर न हो तो अपना सब काम अपने आप कर लेते हैं। जबकि पापा आदि का सब काम मम्मी को करना पड़ता है, अपना समय बर्बाद नहीं करते, कॉलेज पढ़ाकर आते हैं तो बस बैठे पढ़ते-लिखते रहते हैं, शाम को हर रोज एक घंटा घूमने जाते हैं, कभी खाने के लिए तंग नहीं करते। माँ जो परोस देती है, वही बहुत रुचि के साथ खा लते हैं। मुझे समझ में नहीं आता कि उनमें दोष क्या है? शायद वे लोगों से बहुत मिलते जुलते नहीं, शायद इसी से उन्हें ऐसा कहते है।

ऐसे ही एक बार फिर हुआ कि घर के सब लोग कहीं गये हुए थे। मुझे स्कूल का होमवर्क करना था, मैं घर पर रह गया। मुझे खाँसी जो शुरू हुई कि बस मैं बेदम हो गया। चाचाजी मेरी आवाज सुनकर आये और मुझे अपने कमरे में ले गये। उन्होंने काफी कुछ किया और बीच-बीच में कहते जाते थे, "घबरा मत कोई बात नहीं- सब ठीक हो जाएगा, भगवान् सब ठीक कर देंगे।" उस दिन कुछ देर तो अवश्य लगी पर सचमुच ही भगवान् ने सब ठीक कर दिया।

केवल मेरे साथ ही नहीं, चाचाजी अपने बारे में भी सदा यही मंत्र दोहराते थे "सब ठीक हो जाएगा।" एक बार उनकी टांग पर बिना मुँह का बड़ा फोड़ा निकल आया। पर उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा, किसी को पता भी नहीं लगने दिया। मैं तो ऐसे ही एक प्रश्न पूछने उनके पास चला गया। फोड़ा फूट गया था और वे बाथरूम में बैठे उसे साफ कर रहे थे। मैं तो देखकर घबरा गया- "चाचाजी यह क्या?" इतना बड़ा फोड़ा, सारी टांग लाल हुई पड़ी है। आप डॉ. अंकल के पास क्यों नहीं जाते? वे उसी शान्ति और स्निग्धता से बोले, "कुछ नहीं मंटू, देख अब तो यह पक कर फूट गया है, अब सब ठीक हो जाएगा, तकलीफ का समय तो निकल गया। बेकार में बहुत दवाइयाँ खाना शरीर के लिए अच्छा नहीं होता। हाँ, "क्या पूछने आया है?" "फिर पूछ लूँगा।"

"नहीं तू बोलता जा इससे क्या फर्क पड़ता है, पर देख घर में किसी से कुछ कहना नहीं।"

कुछ और बड़ा होने पर मैंने उनसे पूछा, "चाचाजी, आपका यह फार्मूला 'सब ठीक हो जाएगा' है तो बड़े काम का, पर आपने यह लिया कहाँ से?" चाचाजी बहुत जोर

से हँस पड़े। "अरे ये भी कोई ज्योमिट्री के फार्मूले हैं जो किताबों से सीखने पड़ेंगे, ये तो अपने प्रतिदिन के जीवन से सीखे जाते हैं। मैं देखता हूँ कोई तकलीफ आती है तो वह चली तो जाती ही है, हमेशा बनीं थोड़े रहती है पर यदि शान्ति से और बिना घबराए यह विश्वास रखकर सही जाए कि 'सब ठीक हो जाएगा' तो इससे एक तो सहने की शक्ति आ जाती है और दूसरे कष्ट भी कम होता है और मंटू, मैंने देखा है कि बीमारी चली भी जल्दी जाती है, जितनी हाय-तोबा करो, चिंता करो, भय मानो, बीमारी अपना शिकंजा उतना ही कड़ा करती जाती है। मानों उसे बड़ा मजा आता है व्यक्ति को छटपटाते देखने में। चुपचाप शान्ति से पड़े रहो, जो उपाय करना है धैर्य से करो तो बीमारी सताने का आनन्द न मिलने से उदासी होकर मुँह बनाकर चल देती है। ऐसा ही और भी सब दुःख कष्टों के बारे में है।"

मैं चाचाजी के मुँह की तरफ देखता रह गया। इतने मार्के की बात और ये कितने सहज भाव से कह गये! तभी तो मेरे चाचाजी और सबसे निराले हैं, सनकी हैं। कैसा सहज-स्वाभाविक है इनका जीवन-दर्शन। सच जानिए, उनका यह फार्मूला मेरे जीवन में बहुत सहायक रहा। जब-जब कोई कठिनाई आयी उनका यह प्रेरक वाक्य मुझे शक्ति देता रहा।●

आश्रम की गतिविधियाँ

15 अगस्त, 2016 प्रत्येक युवा ने स्वतन्त्रता दिवस के कार्यक्रम में उत्साहपूर्वक भाग लिया। स्वतंत्रा दिवस और श्री अरविन्द के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में हमारे युवाओं ने अपना कौशल यौगिक क्रियाओं और जिमनास्टिक के द्वारा शरीर, मन और आत्मा का संयोजन करते हुए प्रस्तुत किया। पूरा दिन तिरंगे के उत्सव से सारोबार रहा।

सितम्बर, 2016 आश्रम ने 'पौम पौम' संस्था से एक टीम को मदर्स इन्टरनेशनल स्कूल, व मीराम्बिका के हाउसकीपिंग स्टाफ को कुशलतापूर्वक कूड़ा छांटना सिखाने के लिये आमन्त्रित किया। इस इकोफ्रेन्डली कार्य को और सहयोग देने व आगे बढ़ाने के लिये 12 सितम्बर, 2016 को आश्रम के युवाओं के लिये भी ऐसा ही कार्यक्रम रखा गया जिसमें वोकेशनल प्रशिक्षु तथा अभीप्सकों को कुशल 'वेस्ट प्रबंधन' के अन्तर्गत कूड़े को रिसाइकिल करने, घटाने और इसके पुनर्प्रयोग की आवश्यकता के बारे में शिक्षित किया गया तथा कूड़े को आर्गेनिक व गैर आर्गेनिक रूप में अलग-अलग में छांटने के महत्व के बारे में बताया गया।

13 सितम्बर को तनाव से बचने और कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये 'माइन्डफुल' रहने की वर्कशाप रखी गयी जिसमें आश्रम अभीप्सुकों को सरल 'प्ले वे' क्रियाओं द्वारा स्वयं पर एकाग्र होने की तकनीक और प्रतिदिन के जीवन में तनाव व दबाव उत्पन्न करने वाले तत्वों और परिस्थितियों को समझने व उनसे निपटने में सहायता मिली। इसके बाद उन्हें सरल ध्यान की प्रक्रिया सिखायी गयी।

कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य युवाओं को किसी भी परिस्थिति में तुरन्त उत्तर देने के बजाय थोड़ा रूक कर प्रयुत्तर देने के लिये शक्ति प्रदान करना था।

अक्टूबर 2016 अक्टूबर मास दशहरा और दीवाली के उत्सवों के साथ प्रारम्भ हुआ जिसको युवाओं ने रंगोली की साज सज्जा और हस्तनिर्मित कागज़ के अनेक रंगों, आकार और प्रकार के काफटस से अपना व्यक्तिगत स्पर्श देकर मनाया। ये सभी के द्वारा बहुत सराहे गये। उनका दिन संध्या काल में अनेक आनन्द पूर्वक खेलों द्वारा और रात्रि में श्रीला दीदी और उनके समूह द्वारा दियों के प्रकाश और संगीतमयी भेंट से समाप्त हुआ। तारा दीदी के सभी आश्रमवासियों के लिये 'महाकाली' पर पठन के साथ सभी को वो आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्ति हुयी जिसको वे खोज रहे थे।

युवाओं ने कोई पटाखे, फुलझड़ी वगैरह नहीं छोड़े लेकिन बिना किसी प्रदूषण के उन्होंने अपने उमंग, उत्साह और खुशी से उत्सव की आवश्यक प्रसन्नता को पा लिया

4 और 5 नवम्बर-धमपद् का सस्वर पाठ किया गया।

17 नवम्बर- श्री मां का महासमाधि दिवस आश्रमवासियों द्वारा मौन की साधना।

24 नवम्बर-90वीं वार्षिक दर्शन व सिद्धि दिवस- विशेष प्रार्थनाएं और ध्यान, संध्या समय समाधि में द्वीप प्रज्ञवलन।

29 नवम्बर- प्रांजल जौहर का जन्मदिवस- जिसमें आश्रम के युवा और 'द मदर्स इंटरनैशनल' स्कूल के विद्यार्थियों के बीच क्रिकेट मैच का आयोजन।●

'श्रीअरविन्द कर्मधारा' समाचार-पत्र के सम्बन्ध में स्वामित्व तथा अन्य विवरणों की घोषणा

फार्म 4 (नियम 5 देखिए)

1. प्रकाशन का स्थान	श्रीअरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा
2. प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	आनन्द मोहन नरूला
क्या भारत के नागरिक हैं?	हाँ
पता	श्रीअरविन्द आश्रम, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
4. प्रकाशक का नाम	आनन्द मोहन नरूला
क्या भारत के नागरिक हैं?	हाँ
पता	श्रीअरविन्द आश्रम, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
5. सम्पादक का नाम	देवी करुणामयी
क्या भारत के नागरिक हैं?	हाँ
पता	श्रीअरविन्द आश्रम, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	श्रीअरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) ट्रस्ट, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 (भारतीय अधीनस्थ समाज कल्याण अधिनियम के अन्तर्गत भारत में पंजीकृत एक लोकोपकारी संस्था)

मैं, आनन्द मोहन नरूला एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक 3 जून 2016

आनन्द मोहन नरूला
प्रकाशक के हस्ताक्षर